# सद्गुरु एवं उनके सान्निध्य का लाभ

श्री पवनकुमार जैन

सद्गुरु की आगमिक एवं व्यावहारिक विशेषताओं के निरूपण के साथ प्रस्तुत आलेख में लेखक ने उन बिन्दुओं को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है, जिनसे कोई यह सीख सके कि उसे सद्गुरु के सान्निध्य का लाभ किस प्रकार लेना है। **-सम्पादक**

भारतीय परम्परा में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार में ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो गुरु या मार्गदर्शक के बिना सहज रूप से पूर्ण हो जाए। गुरु भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है। जैसे तराजू के दोनों पलड़े डण्डी से बंधे होते हैं और डण्डी के बीच मुठिया होती है वह केन्द्र का कार्य करती है, उसी प्रकार 'गुरु' हमारी संस्कृति के मुख्य तीन तत्त्वों- देव, गुरु और धर्म के मध्य में रहकर केन्द्र का कार्य करता है। गुरु से ही देव और धर्म का स्वरूप जाना जा सकता है। यदि सच्चे गुरु केन्द्र में न हों तो फिर जीव देव और धर्म के सच्चे स्वरूप को जानने से वंचित रह जाता है।

संसार में या व्यावहारिक जीवन में सफलता अर्जित करनी है तो मात्र पुस्तकें पढ़ने से सफलता नहीं मिलती। इसके लिए जो व्यक्ति उस कार्य को सफल कर चुका है उसकी सलाह या मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है।

**गुरु का अर्थ-** गुरु शब्द में 'गु' अंधकार का द्योतक है और 'रु' प्रकाश का। अतः जो हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए, वह गुरु है इसी प्रकार जो तत्त्व ज्ञान को प्रकट कर शिव (मोक्ष) के साथ अभिन्न सम्बन्ध करा देता है, वह गुरु है। कल्याण (योगांक) पृष्ठ 545 पर भी बताया है-

गृणाति उपदिशति धर्ममिति गुरुः।
गिरति ज्ञानमिति गुरुः।
यद्वा गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वादिभिरिति गुरुः।

अर्थात् जो धर्म का उपदेश दे, अज्ञानरूपी तम का विनाश कर ज्ञान रूपी ज्योति से जो प्रकाश करे, देव गन्धर्वादि से जो स्तुत्य हो, उन्हीं साक्षात् देव की संज्ञा 'गुरु' है।

जैन आगमों में गुरु के लिए आचार्य, बुद्ध, धर्माचार्य, उपाध्याय आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। अभयदेवसूरि ने भगवतीसूत्र की वृत्ति में लिखा है- '**आ मर्यादया तद्विषयविनयरूपया चर्यन्ते सेव्यन्ते जिनशासनार्थोपदेशकतया तदाकांक्षिभिरित्याचार्याः।**' अर्थात् जो जिनेन्द्र

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा प्ररूपित आगमज्ञान को हृदयगंम कर उसे आत्मसात् करने की उत्कण्ठा वाले शिष्यों द्वारा विनयादिपूर्ण मर्यादापूर्वक सेवित हो उसे आचार्य कहते हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि में आचार्य पूज्यपाद ने कहा है- 'आचरन्ति तस्माद् व्रतानीत्याचार्यः' अर्थात् जिसके निमित्त से व्रतों का आचरण करता है, वह आचार्य कहलाता है। इसी प्रकार गुरुतत्त्वविनिश्चिय (1.5) में भी बताया है-

जह दीवो अप्पाणं परं च दीवेइ दित्तिगुणजोगा।
तह रयणत्तयजोगा, गुरु वि मोहंधयारहरो।।

अर्थात् जिस प्रकार दीपक स्वयं एवं दूसरे को अपने दीप्तिगुण से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार गुरु भी रत्नत्रय के योग से मोहान्धकार का हरण करता है।

**गुरु के लक्षण-** जीवन के विकास के लिए सद्गुरु का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। सद्गुरु के अभाव में व्यक्ति कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, लेकिन वह विकास की चरम सीमा को प्राप्त नहीं कर सकता है। प्रश्न उपस्थित होता है कि सद्गुरु की पहचान क्या, उसके क्या लक्षण हैं, जिन्हें देखकर जाना जा सके कि यह सद्गुरु है या असद्गुरु। भगवतीसूत्र में सद्गुरु के लक्षणों को बताते हुए कहा गया है-

सुत्तत्थविउ लक्खण जुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ य।
गणतत्तिविप्पमुक्को, अत्थं वाएअ आयरियो।।

**(भगवतीसूत्र, अभयदेववृत्ति 1.1.1,मंगलाचरण)**

अर्थात् जो सूत्र और अर्थ दोनों का ज्ञाता हो, उत्कृष्ट कोटि के लक्षणों से युक्त हो, संघ के लिए मेढि के समान हो, जो अपने गण, गच्छ अथवा संघ को सभी प्रकार के सन्तापों से पूर्णतः विमुक्त रखने में सक्षम हो तथा जो अपने शिष्यों को आगमों की गूढ अर्थ सहित वाचना देता हो, वही आचार्य कहलाने योग्य है। इसी प्रकार आगमकारों ने आचार्य के छत्तीस गुणों का आवश्यक सूत्र में स्पष्ट निर्देश किया है-

पंचिंदिय संवरणो तह णवविह बंभचेर-गुत्तिधरो।
चउव्विह कसायमुक्को इअ अट्ठारस गुणेहिं संजुत्तो।।1।।
पंच महव्वय जुत्तो, पंच विहायारपालणसमत्थो।
पंच समिओ तिगुत्तो, छत्तीसगुणो गुरु मज्झ।।2।।

अर्थात् पाँच इन्द्रियों पर संयम, नव गुप्तियों के साथ ब्रह्मचर्य का पालन, क्रोध आदि चार कषायों पर विजय, अहिंसा आदि पाँच महाव्रतों का पूर्ण पालन, ज्ञानाचार आदि पाँच आचारों का पालन, ईर्या समिति आदि पांच समिति तथा मनोगुप्ति आदि तीन गुप्ति का आराधन, ये छत्तीस गुण जिस आचार्य में होते हैं, वही नमस्कार सूत्र के तीसरे पद में वंदन करने योग्य है।

इन गुणों के अतिरिक्त आचार्य,साधु,मुनि के मूलगुण एवं उत्तरगुण की विवेचना भी मिलती है। जो चारित्र रूपी वृक्ष के मूल (जड़) के समान हो वे मूलगुण एवं जो मूलगुणों की रक्षा के लिए चारित्र

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रूपी वृक्ष की शाखा, प्रशाखा के समान गुण हों, वे उत्तरगुण कहलाते हैं। श्वेताम्बर मान्यता में सामान्यतया साधु के पाँच मूलगुण (अहिंसा आदि पाँच महाव्रत) एवं बाईस उत्तरगुण प्रतिपादित हैं। 22 उत्तरगुण हैं- 1-5. इन्द्रिय-दमन, 6-9. कषाय-निवारण, 10. भाव के सच्चे, 11. करण के सच्चे, 12. योग के सच्चे, 13. क्षमावान, 14. वैराग्यवान, 15. मन-समाधारणता (वश में करना), 16. वचन-समाधारणता, 17. काय-समाधारणता, 18. ज्ञान सम्पन्नता 19. दर्शन सम्पन्नता, 20. चारित्र सम्पन्नता, 21. वेयणासमा अहियासणया- वेदना को समता से अधिसहन करना, 22. माणंतिय अहियासणया- मारणंतिक कष्ट को भी अधि सहना। इसी प्रकार श्री भगवतीसूत्र के 12 वें शतक के पहले उद्देशक में 'तीन जागरणा' के वर्णन में मूलगुण एवं उत्तरगुण का विवेचन मिलता है, वहाँ चरणसत्तरि (मूलगुण) के 70 भेद हैं-

वय-समणधम्म, संजम-वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
णाणाइतीय तव, कोह-णिग्गहाइ चरणमेयं॥

अर्थात् 5 महाव्रत, 10 यतिधर्म, 17 प्रकार का संयम, 10 प्रकार की वैयावच्च, ब्रह्मचर्य की 9 वाड़, 3 रत्न (ज्ञान-दर्शन-चारित्र), 12 प्रकार का तप, 4 कषाय का निग्रह, ये सभी मिला कर चरणसत्तरि के 70 भेद हुए। इसी प्रकार करणसत्तरि (उत्तरगुण)के 70 भेद हैं -

पिंडविसोही समिई, भावणा-पडिमा इंदिय-णिग्गहो य।
पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहं चेव करणं तु॥

अर्थात् 4 प्रकार की पिण्ड-विशुद्धि, 5 समिति, 12 भावना, 12 भिक्षु-प्रतिमा, 5 इन्द्रियों का निरोध, 25 प्रकार की पडिलेहणा, 3 गुप्ति, 4 अभिग्रह, ये सभी मिला कर 70 भेद हुए। इसी प्रकार जैन सिद्धान्त बोल संग्रह (भाग 1) में साधुओं के लिए पाँच महाव्रत मूलगुण हैं तथा श्रावकों के लिए पाँच अणुव्रत मूलगुण हैं। गुरुतत्त्वविनिश्चय के अनुसार भी पाँच ही मूलगुण हैं, किन्तु उत्तरगुण 103 गिनाये हैं। उत्तरगुणों में 42 पिण्डविशुद्धि, 8 समिति, 25 भावना, 12 तप, 12 प्रतिमा और 4 अभिग्रह हैं। यहाँ समिति में ही तीन गुप्ति का समावेश कर लिया है, इसीलिए समिति के 8 भेद बताए हैं। लेकिन दिगम्बर-परम्परा में साधु के 28 मूलगुण इस प्रकार वर्णित हैं- पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय-निग्रह, छह आवश्यक, केशलोंच, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तघर्षण, स्थितभोजन, एकभक्त एवं उत्तरगुणों की संख्या अधिक है।

उपर्युक्त गुणों से सम्बद्ध एवं कुछ सामान्य गुण सद्गुरु में होते हैं, जिन्हें हम देखकर जान सकते हैं कि यह सद्गुरु है, यथा-

**(1) सर्वतोभावेन समर्पण-** सद्गुरु सदैव तीर्थंकर की आज्ञा में तत्पर रहते हैं, तीर्थंकर की आज्ञा के सामने वे कभी अपना छंद नहीं रखते हैं, क्योंकि 'आज्ञा में अपील नहीं और समर्पण में सवाल नहीं' यही सद्गुरु जीवन का मूल मंत्र होता है। 'आणाए मामगं धम्मं' अर्थात् तीर्थंकर की आज्ञा ही मेरा धर्म है। इस

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धांत पर चलते हुए ये अपना सर्वस्व तीर्थंकर के चरणों में अर्पण कर देते हैं। क्योंकि जो साधक हमेशा तीर्थंकर की आज्ञा में रहता हो और कोई भी कार्य उनकी आज्ञा से बाहर नहीं करता हो, तीर्थंकर द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलता हो वही शीघ्र कर्मों को जीत कर मोक्ष प्राप्त करता है। मानी व्यक्ति का कभी कल्याण नहीं होता है। जो तीर्थंकर के प्रति समर्पित होते हैं उनका ही कल्याण होता है। अतः कवि कहता है -

*'मैं भी हूँ कुछ' सोचना नहीं, मैं ना कुछ ना चीज हूँ।*
*गुरु मुझे धर्म क्षेत्र (में) बोये, क्या मैं ऐसा बीज हूँ।*
*सड़ा गला बोया न जाता, चतुर होते हैं किसान।।*

**(2) भेदविज्ञान के ज्ञाता-** शरीर को आत्मा से अलग मानना अध्यात्म योगी का प्रमुख लक्षण है। शरीर आदि समस्त बाह्य वस्तुओं से अपने को अलग करके आत्मस्वरूप में ही रमण करना अध्यात्म योग है। अध्यात्म योग की ऐसी साधना सद्गुरु करते हैं। वे **'मुणिणो सया जागरन्ति'** आगम वाक्य को चरितार्थ करते हैं। प्रत्येक परिस्थिति में वे अपनी साधना में लीन रहते हैं। आत्मा को शरीर से भिन्न मानना साधक का प्रमुख लक्षण है। यदि कदाचित् शरीर में असाता उत्पन्न हो जाती है तो वे यही चिन्तन करते हैं कि 'पीड़ा शरीर को हो रही है, मैं तो शरीर से भिन्न हूँ, मेरा रोग-शोक से कोई संबंध नहीं, मैं तो सच्चिदानंद हूँ।' अर्थात् यह शरीर मेरा साथी नहीं है। मेरा साथी तो आत्मा है और आत्मा शरीर से अलग है, अतः जो दुःख हो रहा है वह शरीर को हो रहा है। आत्मा को कोई मार नहीं सकता है वह तो अजर, अमर और अविनाशी है। इसलिए सद्गुरु शारीरिक कष्टों की परवाह नहीं करते हैं। वे 'सव्वभूयप्पभूयस्स' अर्थात् सभी प्राणियों को आत्मवत् समझते हैं इसलिए किसी भी जीव की हिंसा की प्रेरणा नहीं देते।

**(3) अप्रमत्त साधक-** 'अलं कुलस्स पमाएणं' अर्थात् प्रज्ञाशील साधक अपनी साधना में किंचित् मात्र भी प्रमाद नहीं करता। आचारांग की यह सूक्ति सद्गुरु के जीवन में आत्मसात् होती है। सद्गुरु की दिनचर्या सूर्योदय से बहुत समय पूर्व ही प्रारम्भ हो जाती है। प्रवचन आदि कार्यों के बाद जब भी समय मिलता है, वे आत्म-चिन्तन में रत रहते हैं। प्रमाद वृत्ति से वे सदैव दूर रहते हैं। उनका मानना होता है कि प्रमाद व्यक्ति को पतन के गर्त में ले जाता है। इसलिए 'समयं गोयम! मा पमायए' के अनुसार अपनी दिनचर्या व्यतीत करते हैं। उनका मानना है कि 'ठिओ परं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं' अर्थात् यदि मैं धर्म में स्थिर होऊँगा तो दूसरों को भी धर्म में स्थिर कर सकूँगा, अतः वे अप्रमत्त भावों से अपनी साधना करते हैं। साथ ही शिष्यों की सारणा, वारणा व धारणा करते हुए, उन्हें आगम शिक्षा से संस्कारित एवं आचरण से उन्नत बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। उनकी दिनचर्या पूर्णतया पुरुषार्थमय होती है। कभी पुरुषार्थ में शिथिलता नहीं आने देते हैं, कारण उनके जीवन में कोई अहं नहीं होता है, क्योंकि जब साधना एकांत आत्म-कल्याण हेतु की जाती है तो वह साधना उच्चकोटि की होती है और जो साधक ऐसी साधना करता है वह भी उच्चकोटि का साधक होता है। अप्रमत्तता, निर्भयता, निरभिमानता,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

निस्पृहता, मितभाषिता, गुणवानों के प्रति प्रमोद-भावना, प्राणिमात्र के प्रति करुणा आदि अनेक गुण सद्गुरु की साधना में चार-चांद लगा देते हैं। आत्म-जागृति के साथ विषय-कषायों, मान-प्रतिष्ठा की चाहना आदि जो साधना के दुर्गुण हैं, उनसे सद्गुरु कोसों दूर रहते हैं। 'भारंडपक्खी व चरेऽप्पमत्ते' के अनुसार साधुचर्या के पालन में वे सदैव जागृत रहते हैं और 'आयट्ठं सम्मं समणुवासेज्जासि' अर्थात् अपने आत्महित के लिए सम्यक् प्रकार से प्रयत्नशील बने रहते हैं।

**(4) निस्पृहता-** उत्तराध्ययन सूत्र का अग्रांकित वाक्य सद्गुरु के ऊपर पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है - **'निम्ममो निरंहकारो, निस्संगो चत्तगारवो'** अर्थात् सद्गुरु ममत्व और अंहकार रहित तो हैं ही, साथ ही निस्संग और गारव के परित्यागी हैं। वे सदैव लोकैषणा से दूर रहते हैं। सांसारिक डिग्री या मेरे नाम के आगे कोई पदवी लगे, लोग मेरी जयकार करें इत्यादि दुर्गुण उनके जीवन में नहीं होते हैं। उनकी भावना होती है कि साधुता की पदवी रहते हुए आराधकपने में आयुष्य का बंध हो जाये तो मुक्ति फिर ज्यादा दूर नहीं, क्योंकि जब साधु की पदवी प्राप्त करली तो बाकी सारी पदवियाँ बेकार हैं। अतः कहा भी है -

*अकिंचन अनगार होता, माया मद नहीं चाहिए।*
*साधु का पद पा लिया तो और क्या पद चाहिए?*
*साधु की पदवी है मोटी, साधुता छोटी न जान।।*

अतः जो आनन्द की अनुभूति निस्पृहता से होती है वह लोकैषणा की पूर्ति में नहीं है। अतः वे सदैव एक सच्चे साधक की भांति साधुता की सुरक्षा में तत्पर रहते हैं। मेरा नाम संसार में अमर रहे, लोग मुझे वर्षों तक याद रखे, इसलिए नाम के लिए संयम को दूषित कर लोगों को राजी कर देना ऐसी प्रवृत्तियाँ उनके जीवन से कोसों दूर हैं, क्योंकि वे मानते हैं-

*नाम जब तीर्थंकरों के भी अमर ना रह सके।*
*मेरा नाम अमर रहेगा, क्या कोई यह कह सका।*
*नामवारी की चाहना को दिल से अपने दे निकाल।।*

**(5) सहनशीलता-** सद्गुरु विपरीत और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना सदा शांत और प्रसन्न रहकर करते हैं। ये कष्टसहिष्णु होते हैं। स्वेच्छा से अनुकूलता का त्याग और प्रतिकूलता को समभाव से सहन करना उनकी अनूठी विशेषता होती है। वे उपसर्ग और परीषहों को अपनी साधना की कसौटी मानते हैं एवं सदैव इस पर खरा उतरने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। क्योंकि सद्गुरु **'देहदुक्खं महाफलं'** को सदैव ध्यान में रखते हैं। वे उपसर्ग-परीषह को समभाव से सहन कर इन्हें कर्मों के कर्जे को उतारने का सुन्दर मौका मानते हैं।

**(6) गुणग्राहकता-** सद्गुरु के पास कोई भी व्यक्ति आता है चाहे वह बालक हो, जवान हो या वृद्ध, धनवान हो या गरीब, प्रमुख हो या सामान्य, सभी के साथ, हमेशा आत्मीयता का व्यवहार करते हैं। वे कभी भी किसी की उपेक्षा नहीं करते हैं। इतना ही नहीं आने वाले व्यक्ति के सामान्य गुणों का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आदरपूर्वक सम्मान कर, प्रशंसा कर उनके उत्साह में और गुणों में अभिवृद्धि करते हैं। वे गुणवानों की प्रशंसा करते हैं चाहे वह किसी भी संघ या सम्प्रदाय से जुड़ा हुआ हो। सद्गुरु की दृष्टि सदैव गुणों की तरफ ही रहती है। क्योंकि शक्कर चींटियों को आमंत्रण नहीं देती है वे तो बिना बुलाये ही शक्कर के पास आ जाती हैं। इसी तरह गुण पिपासु भी गुणीजन के पास अपने आप आ जाते हैं। सद्गुरु गुण-प्रशंसक व गुण-ग्राहक होते हैं तथा परनिंदा से सदैव दूर रहते हैं।

**(7) सरलता-** कथनी-करनी में एकरूपता सद्गुरु का विशिष्ट गुण होता है। साधक में सरलता का गुण है या नहीं, उसकी कसौटी ही उसकी कथनी करनी की एकरूपता है। वे उतना ही कहते हैं जितना कि वे कर पाते हैं। साथ ही सभी को प्रेरणा करते हैं कि कथनी और करणी में विसंवाद नहीं होना चाहिए। क्योंकि इससे सरलता रूपी गुण का विनाश होता है। **'आयगुत्ते सया वीरे जाया मायाइ जावए'** अर्थात् जो आत्म गुप्त है, संयमी जीवन में सदा रमता है, वह अप्रमत्त साधक होता है। साथ ही आचारांग सूत्र में साधु के तीन लक्षण बताये हैं - ऋजुकृत, नियाग-प्रतिपन्न, अमायी। प्रथम लक्षण का अर्थ है सरलता अर्थात् जो सरल हो, जिसका मन, वाणी-कपट रहित हो तथा जिसकी कथनी-करनी में समानता हो वह ऋजुकृत है। **'धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ'** उत्तराध्ययन सूत्र के इस वाक्य के अनुसार धर्म शुद्ध हृदय में ही ठहरता है। शुद्ध हृदय के लिए सरलता आवश्यक है। अतः सरलता साधुता का मुख्य लक्षण है। निश्चलता और सरलता सद्गुरु के स्वाभाविक गुण हैं। जितना ऊंचा उनका व्यक्तित्व होता है उतना ही सरल उनका जीवन होता है। बालक सी सरलता, संयम पालन में कठोरता, माया रहित जीवन, ये तीनों गुण सद्गुरु में होते हैं, क्योंकि -

मान में अकड़ा रहेगा, विनयी नहीं बन पायेगा।
पात्र ही नहीं पास में, तो खीर किसमें खायेगा।
छोटा हूँ वामन शिष्य हूँ, खुल्ले दिल से कर ऐलान।।

**(8) असांप्रदायिकता-** सद्गुरु सम्प्रदाय को एक व्यवस्था मानते हैं। सम्प्रदाय तो चतुर्विध संघ के ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप के संरक्षण और संवर्धन हेतु प्रचलित हैं। लेकिन सब का कार्य जिनशासन की सुरक्षा का है। अतः वे चतुर्विध संघ को यही उपदेश देते हैं कि अन्य सम्प्रदाय वालों के साथ पर का व्यवहार करना या उनसे द्वेष रखना अच्छा नहीं है। हम सभी को अपना साधर्मी भाई समझें। वर्तमान में धार्मिक जगत् में सम्प्रदायवाद के पोषण को अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा है, किन्तु आज भी सद्गुरु इसके विपरीत उदार व असांप्रदायिक भावों को महत्त्व देते हैं। क्योंकि सद्गुरु के हृदय में प्राणिमात्र के प्रति करुणा, दया की भावना होती है। **'सत्त्वेषु मैत्री'** आपके जीवन का ध्येय है। जिस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी ने सभी जीवों की रक्षा के लिए प्रवचन फरमाया, उसी प्रकार संसार के प्राणिमात्र के विकास हेतु सद्गुरु की वाणी से अमृत झरता है। दीन-दुःखियों एवं अज्ञानियों को देख कर उनका हृदय दया से भीग जाता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

**(9) जीवन-निर्माता-** वर्तमान समय में तीर्थंकर नहीं, गणधर नहीं, केवली नहीं, पूर्वधर नहीं इसलिए चतुर्विध संघ का भार सद्गुरु पर रहता है। सद्गुरु को परम पिता कहा है। जन्म देने वाला पिता होता है, लेकिन सद्गुरु कल्याण का मार्ग दिखाता है, इसलिए उन्हें भी परम पिता कहा है। सद्गुरु अर्थात् आचार्य के आगमों में छत्तीस गुण बताये गये हैं। गुणों को ही पूजा का कारण माना गया है। गुणों की महत्ता है। आचार्य नाम की जाति भी है। डाकोत भी अपने आपको आचार्य कहते हैं। नाम मात्र से आचार्य-उपाध्याय तो कई हैं, लेकिन वे भाव से पूज्य नहीं होते।

तीन प्रकार के आचार्य होते हैं - कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। आचार्य में कलाचार्य के रूप में लोगों को धर्म से जोड़ने की अद्भुत कला होती है। इसके कारण लोग अपनी शंकाओं, जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त करने हेतु सद्गुरु के चरणों में आते हैं। इनके संसर्ग में जो आता है, उसे ये उन्नति के पथ पर बढ़ाते हैं। सद्गुरु शिल्पाचारी के रूप में कई व्यक्तियों के जीवन का निर्माण करते हैं। धर्माचार्य चतुर्विध संघ को कुशलतापूर्वक संभालते हैं।

**(10) प्राप्त शक्तियों का सदुपयोग-** स्वस्थ जीवन की दो धारा है - लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक धारा के अन्तर्गत रहने वाले जीवन को हम व्यावहारिक जीवन कह सकते हैं। लोकोत्तर जीवन जीने वाले के लिए आध्यात्मिक जीवन धारा का प्रयोग किया जा सकता है।

संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी, जीवन को सर्वांगीण सफल बना ले, असम्भव है। विरले ही व्यक्ति अपने जीवन को ऊँचा बनाने में सफल होते हैं। व्यावहारिक व आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में यही बात है। प्रत्येक व्यक्ति में जीवन को सफल या निष्फल बनाने के लिए तीन शक्तियाँ होती हैं। इन्हीं शक्तियों से व्यक्ति अपने जीवन का सुखद निर्माण कर सकता है और दुःखद भी। वे तीन शक्तियाँ हैं - विद्या, धन और सत्ता, जो प्रत्येक व्यक्ति को अल्प या अधिक मात्रा में अवश्य मिलती हैं। पवित्र और महान् आत्माएँ इन तीनों शक्तियों का सदुपयोग करके जीवन को यशस्वी बना लेती हैं। ऐसी आत्मा होती है- सद्गुरु। वे अपना जीवन स्व-पर के कल्याण में ही समर्पित कर देते हैं।

**(11) अनुशासन प्रिय-** सद्गुरु अनुशासन को बहुत महत्त्व देते हैं, पर साथ ही उनका मानना है कि पहले स्वानुशासन फिर परानुशासन करना चाहिए। अनुशासन का अर्थ स्वयं का स्वयं पर अनुशासन। सीमा (अनुशासन) में रह कर प्रत्येक व्यक्ति अपना आत्मोत्थान कर सकता है। अनुशासन आत्म प्रगति का प्राण है। अनुशासन साधना का परिधान है। आत्म-लक्ष्य-प्राप्ति की सफलता का यह पहला मंत्र है। अनुशासन किसी भी प्रमाद का बंध नहीं, बल्कि पापों का नाश करने वाला तंत्र है। अनुशासन से ही गुणों का विकास होता है। अतः सद्गुरु एक कुशल प्रशासक के रूप में स्वयं अनुशासन में रहते हैं और चतुर्विध संघ को अनुशासन में रखते हैं।

**सद्गुरु के सान्निध्य का लाभ कैसे लें?**

उपर्युक्त वर्णित गुण जिन आचार्य या साधु में होते हैं, वे सद्गुरु कहलाते हैं। ऐसे सद्गुरु के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सान्निध्य का लाभ कैसे लिया जाए या उनकी संगति से अपना कल्याण कैसे हो, क्योंकि प्रायः सभी धर्मों में अपने गुरु को वन्दन करने की प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति सामान्य रूप से सर्वत्र प्रचलित है साथ ही सभी दर्शनों में गुरु वन्दन का महत्त्व बताया है। जैन आगमों में भी गुरुओं की संगति के अभाव में सम्यग्दृष्टि आत्मा का भी पतन हो जाता है। इसका प्रमाण ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में नंदनमणिहार का वर्णन है। उसने व्रत ग्रहण करने के बाद लम्बे समय तक संतों (गुरु) की संगति नहीं की। इससे वह अपने व्रतों और समकित से च्युत हो मिथ्यादृष्टि होकर तिर्यंच गति में चला गया। गुरु वन्दन से जीवन को दिशा मिलती है और दिशा से दशा बदलती है। गुरुवंदन से जिनवाणी सुनने को मिलती है। सुनने से ज्ञान होता है...इसी प्रकार इसका अन्तिम फल मोक्ष बताया है। उत्तराध्ययन सूत्र का 19वाँ अध्ययन इस बात का साक्षी है कि मात्र सद्गुरु दर्शन से ही मृगापुत्र को बोध प्राप्त हो गया था, मृगापुत्र ने सद्गुरु की न तो वाणी सुनी, न शंका-समाधान किया, मात्र दूरतः दर्शन से ही उनके जीवन लक्ष्य बदल गया।

अह तत्थ अइच्छंतं, पासइ समण-संजयं।
तव-णियम-संजमधरं, सीलड्ढं गुण-आगरं ।।5।।

भावार्थ - इसके बाद राजकुमार ने नगर अवलोकन करते हुए तप, नियम और संयम को धारण करने वाले अठारह हजार शील के अंग रूप गुणों के धारक ज्ञानादि गुणों के भण्डार एक श्रमण संयत (जैन साधु) को राज-मार्ग पर जाते हुए देखा।

तं पेहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ।
कहिंमण्णेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा ।।6।।

भावार्थ - मृगापुत्र उस मुनि को अनिमेष-दृष्टि से देखने लगा और मन में सोचने लगा कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का रूप मैंने पहले कहीं अवश्य देखा है।

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि-सोहणे।
मोहं गयस्स संतस्स, जाइसरणं समुप्पण्णं ।।7।।

भावार्थ - उस साधु को देखने पर मोहनीय (चारित्र मोहनीय) कर्म के उपशांत (देश-उपशम) होने पर तथा अध्यवसायों (ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाले आन्तरिक परिणामों) की विशुद्धि होने से मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया।

देवलोगचुओ संतो, माणुसं भवमागओ।
सण्णिणाणे-समुप्पण्णे, जाइं सरइ-पुराणियं ।।8।।

भावार्थ - संज्ञिज्ञान-जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर वह मृगापुत्र अपने पूर्व-जन्म को स्मरण करने लगा कि मैं देवलोक से च्यव कर मनुष्य भव में आया हूँ।

जाइसरणे समुप्पण्णे, मियापुत्ते महिड्ढिए।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ।।9।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होने पर महाऋद्धि वाला वह मृगापुत्र अपने पूर्व-जन्म को और पूर्व-जन्म में पालन किये हुए साधुपन का स्मरण करने लगा।

साधुपने का स्मरण होते ही उन्हें विषयों से विरक्ति हो गई और माता-पिता से संयम की आज्ञा लेकर संयम ग्रहण कर लिया। मात्र दर्शन से ही कुछ पलों में जीवन का लक्ष्य बदल गया। भोगों की विरासत विरक्ति में बदल गई। जहाँ संसार की वृद्धि हो रही थी वहीं कुछ पलों में संसार-मुक्ति का उपक्रम शुरु हो गया। अतः गुरु-वन्दन का महत्त्व अवर्णनीय है। लेकिन प्रायः आज यह देखा जाता है कि इस परम्परा का मात्र निर्वहन हो रहा है। गुरु के पास जाते समय जो अहो भाव/पूज्य भाव हमारे अन्तर में होना चाहिए, उसकी रिक्तता हमारे व्यवहार में देखी जा रही है। उसी रिक्तता के कारण हम सद्गुरु की **संगति का पूरा लाभ नहीं उठा सकते हैं। गुरु के पास जाते समय जो अहोभाव होना चाहिए उस अहोभाव को उत्पन्न करने के लिए महापुरुषों ने चार सूत्र दिए हैं- 1. जिज्ञासा 2. नम्रता 3. शिष्यत्व 4. समर्पण।**

**1. जिज्ञासा-** जिज्ञासा का अर्थ है- **जि**-जिनेश्वर के **ज्ञा**-ज्ञान की **सु**-सूचना अर्थात् जिससे जिनेश्वर के ज्ञान की सूचना हो उसे जिज्ञासा कहते हैं। गुरु चरण का हमें पूरा लाभ लेना है तो हमें जीव-अजीव, पुण्य-पाप आदि के सम्बन्ध में, संसार की विचित्रता के सम्बन्ध में जैसे एक प्राणी सुखी तो दूसरा दुःखी क्यों है....इत्यादि कई प्रकार की जिज्ञासाएं हो सकती हैं। इन जिज्ञासाओं का गुरु चरणों में समाधान प्राप्त करें। समाधान से समाधि प्राप्त होती है, जिज्ञासा के कारण अधिक से अधिक समय गुरु चरणों में व्यतीत होगा। उस समय में महापुरुषों के विशुद्ध पुद्गलों से जो शांति का अनुभव होगा वह अकथनीय है, जिज्ञासा के लिए चिन्तन आवश्यक है। ज्यों-ज्यों हमारा चिन्तन बढ़ेगा, त्यों-त्यों जिज्ञासा जगेगी, जिज्ञासा के समाधान के लिए गुरु-सान्निध्य को प्राप्त करना होगा। अतः गुरु-सान्निध्य का पूरा लाभ लेना है तो हमें जिज्ञासु होना चाहिए। अनेक बार देखा गया है कि वास्तविक रूप में कुछ नहीं होता है, पर मानव-मन मात्र भ्रमणा के कारण दुःखी होता है और मन ही मन कुंठित होता रहता है। लेकिन जिज्ञासु होने पर गुरु चरण में जिज्ञासा रखने पर जो समाधान प्राप्त होगा उससे अलौकिक शांति की अनुभूति होगी। मानव को जहाँ एक बार आत्म-शांति का अनुभव होता है वहाँ उसका बार-बार जाने का मन होता है। अतः जब भी गुरु चरण में जाएं जिज्ञासा के साथ जाएं। स्वाध्याय के पाँच भेदों में जिज्ञासा (प्रतिपृच्छना) तीसरा भेद है, इसका फल भगवान् ने उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 29 में इस प्रकार बताया है-

**पडिपुच्छणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?**

प्रश्न - हे भगवन्! प्रतिपृच्छना से जीव को क्या लाभ होता है?

**पडिपुच्छणयाए णं सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ, कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिंदइ ॥20॥**

उत्तर - प्रतिपृच्छना से जीव सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ दोनों को विशुद्ध करता है और कांक्षा-मोहनीय कर्म को विच्छिन्न-नाश कर देता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

**2. नम्रता**- नम्रता अर्थात् विनय। विनय का अर्थ है - **वि**-विकास, **न**-नवीन, **य**-याद (ज्ञान) अर्थात् जिसके माध्यम से नवीन रूप में ज्ञान (याद/स्मृति) सहित विकास होता है उसे विनय कहते हैं। जिज्ञासा का समाधान जीव को स्व में स्थिर करता है और समाधान कर्ता के प्रति मन में नम्रता का भाव उत्पन्न होता है। विनय वह गुण है जिसकी तुलना में अन्य गुणों का कोई मूल्य नहीं है। महापुरुषों ने फरमाया है कि जिसके जीवन में विनय है उसने कुछ भी प्राप्त नहीं करते हुए भी जीवन में सब कुछ प्राप्त कर लिया है और जिसके जीवन में विनय नहीं है उसने सब कुछ प्राप्त कर के भी जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं किया है। कहा भी है बड़ों की नज़र ही दौलत है। गुरुकृपा प्राप्त करने वाला सब कुछ पा जाता है। विनयी की परिभाषा भगवान् ने उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 1 में इस प्रकार बताई है-

**आणाणिद्देसकरे, गुरूणमुववायकारए।**
**इंगियागारसंपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चइ ।।2।।**

भावार्थ - गुरु आज्ञा को स्वीकार करने वाला, गुरुजनों के समीप रहने वाला, इंगित और आकार से गुरु के भाव को समझने वाला साधु विनीत कहा जाता है। यह नियम हम गृहस्थों के लिए भी लागू होता है। यह गुण हममें होंगे तभी हम विनयी की श्रेणी में होंगे। गुरु के प्रति सदैव विनयी रहें और साथ ही 14 प्रकार की वस्तुओं को निर्दोषरीति से दान देकर गुरु की सेवा का लाभ लें। भगवान् ने सेवा का फल उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 29 में इस प्रकार फरमाया है-

**वेयावच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ?**

प्रश्न - हे भगवन्! वैयावृत्त्य करने से जीव को क्या लाभ होता है?

**वेयावच्चेणं तित्थयर-णामगोयं कम्मं णिबंधइ ।।43।।**

उत्तर - वैयावृत्त्य करने से तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म का बन्ध करता है।

वैयावृत्त्य का अर्थ है - निःस्वार्थ भाव से गुणिजनों तथा स्थविर आदि मुनियों की आहार आदि से यथोचित सेवा करना। आचार्य आदि दस की उत्कृष्ट भाव से सेवाभक्ति - वैयावृत्त्य करता हुआ जीव उत्कृष्ट रसायन आने पर तीर्थंकर नामगोत्र कर्म का उपार्जन करता है। यह तो सेवा का उत्कृष्ट फल है साथ ही सेवा से अन्य लाभ होते हैं, इस बात को इसी अध्ययन में भगवान् ने इस प्रकार बताया है-

**गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?**

प्रश्न - हे भगवन्! गुरुजनों तथा साधर्मियों की सेवा शुश्रूषा करने से जीव को क्या लाभ होता है?

**गुरुसाहम्मिय-सुस्सूसणयाए णं विणयपडिवत्तिं जणयइ, विणयपडिवण्णे य णं जीवे अणच्चासायणसीले णेरइय-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देव-दुग्गईओ णिरुंभइ, वण्णसंजलण-भत्ति-बहुमाणयाए मणुस्सदेवसुग्गईओ णिबंधइ, सिद्धिसोग्गइं च विसोहेइ, पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ, अण्णे य बहवे जीवा विणइत्ता भवइ ।।4।।**

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - गुरुजनों की तथा साधर्मियों की सेवा शुश्रूषा करने से विनय प्रतिपत्ति अर्थात् विनय की प्राप्ति होती है। विनय को प्राप्त हुआ जीव सम्यक्त्वादि का नाश करने वाली आशातना का त्याग कर देता है, फिर वह जीव नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव सम्बन्धी दुर्गतियों का निरोध कर देता है। गुरुजनों का गुणकीर्तन, प्रशंसा, भक्ति-बहुमान करने से मनुष्य और देवों में उत्तम ऐश्वर्य आदि सम्पन्न शुभ-गति का बन्ध करता है। सिद्धि सुगति-मोक्ष के कारणभूत ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्ष-मार्ग की विशुद्धि करता है। विनय-मूलक प्रशस्त सभी उत्तम कार्यों को सिद्ध कर लेता है और दूसरे बहुत-से जीवों को विनयवान बनाता है अर्थात् उसे देखकर बहुत से जीव विनयवान बनते हैं।अतः विनय आत्मा के लिए कल्याण रूप है।

जिसके प्रति हमारे मन में नम्रता है, पूज्य भाव है, उसी के सामने मन की जिज्ञासा रखते हैं। महापुरुषों ने फरमाया है कि मन की बात उसी के सामने कहनी चाहिए जिसमें तीन गुण हों- 1. जो तुम्हारी बात को ध्यान से सुने, 2. जो तुम्हें गलत नहीं समझे और 3. जो तुम्हें सही सलाह/समाधान दे। यह तीनों गुण गुरु में होते हैं, लेकिन जब तक हमारा उनके प्रति नम्र भाव नहीं होगा तब तक हम संकोच करेंगे। अतः जिज्ञासा के समाधान के लिए समाधानकर्त्ता के प्रति पूर्णतः नम्रभाव होना चाहिए। आगमकारों ने भी उत्तराध्ययन सूत्र के पहले अध्ययन में विनय का फल बताते हुए कहा है-

*णच्चा णमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए।*
*हवइ किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा ।।45 ।।*

**भावार्थ** - विनय के स्वरूप को जान कर बुद्धिमान् व्यक्ति नम्र बनता है, लोक में उसकी कीर्ति होती है और जिस प्रकार पृथ्वी सब प्राणियों के लिए आधार रूप है, उसी प्रकार वह भी सभी शुभ अनुष्ठानों एवं सद्गुणों का आधार रूप होता है।

**3. शिष्यत्व-** साधु हमारे गुरु हैं यह तो सर्वविदित हैं अर्थात् जैन संतों को हमारे धर्म-गुरु के रूप में समाज में स्थान प्राप्त है, लेकिन हम उनके शिष्य हैं या नहीं, यह चिन्तन का विषय है। क्योंकि शिष्यत्व (शिष्यपने का भाव) की व्याख्या करेंगे तो शि-शिक्षा (ज्ञान), ष-संतोष, य-याचक, त-तरलता (सरलता), व-विनय अर्थात् जिसके मन में सदैव ज्ञान पाने की ललक हो, संसार वृत्तियों में संतोष हो, गुरु से सदैव नवीन ज्ञान देने की याचना करता हो, जीवन में तरलता (सरलता) हो, आचरण में विनय हो- जिसमें ये पाँच गुण पाये जाते हैं वह शिष्यत्व भाव से युक्त है और जिसमें शिष्यत्व गुण पाया जाता है वही शिष्य है। सोचने का विषय यह है कि क्या ये गुण हममें पाये जाते हैं? क्या हमें हमारे गुरुओं के शिष्य के रूप में मान्यता प्राप्त है या अन्य किसी दूसरे रूप में....। क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन ग्यारह में शिष्य के आठ गुण इस प्रकार बताए हैं-

*अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीलेत्ति वुच्चइ।*
*अहस्सिरे सया दंते, ण य मम्ममुदाहरे ।।4 ।।*

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

णासीले ण विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ ।।5।।

**भावार्थ** - आठ स्थानों से यह आत्मा शिक्षाशील (शिक्षा के योग्य) कहा जाता है, अधिक नहीं हंसने वाला, इन्द्रियों का दमन करने वाला और मर्म वचन न कहने वाला, सर्वतः चारित्र की विराधना न करने वाला (चारित्र धर्म का पालन करने वाला सदाचारी), देशतः भी चारित्र की विराधना नहीं करने वाला अर्थात् व्रतों का निरतिचार पालन करने वाला और जो अतिशय लोलुप नहीं है तथा जो क्रोध-रहित और सत्यानुरागी (सत्यनिष्ठ) है, वह शिक्षाशील कहा जाता है।

क्या हममें ये गुण हैं? यदि हममें ये गुण नहीं हैं तो हमें प्रयास करना चाहिए कि इन गुणों का हममें सद्भाव हो जिससे हम सच्चे शिष्यत्व को प्राप्त कर सकें। जब तक हम में सच्चा शिष्यत्व नहीं होगा तब तक हममें पूर्णतया नम्रता नहीं आ सकती है और नम्रता के अभाव में जिज्ञासाओं का उचित समाधान नहीं होता है।

गुरु महाराज हमारी गलतियों के लिए कभी हमें उपालम्भ दें और हममें नम्रता भाव नहीं है तो शायद हमारे विचार ऊँचें-नीचे हो सकते हैं, लेकिन जो नम्र होगा उसके विचार ऊँचे-नीचे नहीं होंगे। भगवान् ने उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन एक में भी कहा है-

अणुसासिओ ण कुप्पिज्जा, खंतिं सेविज्ज पंडिए।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए।।9।।

**भावार्थ** - यदि कभी गुरु महाराज कठोर वचनों से शिक्षा दें, तो भी बुद्धिमान् विनीत शिष्य को क्रोध नहीं करना चाहिए, किन्तु क्षमा - सहनशीलता धारण करनी चाहिए। दुःशील क्षुद्र व्यक्तियों के अर्थात् द्रव्य बाल और भाव बाल व्यक्तियों के साथ संसर्ग-परिचय नहीं करना चाहिए और हास्य तथा क्रीड़ा का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। अतः जब भी संत चरणों में जाने का सुयोग प्राप्त हो तब शिष्यत्व भाव के साथ ही श्री चरणों में जाना चाहिए। जिसमें शिष्यत्व होगा उसमें लघुता होगी और लघुता से ही प्रभुता मिलेगी कहा भी है-

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
कीड़ी सो मिसरी चुगै, हाथी के सिर धूर।।

यदि हमें मुक्ति को प्राप्त करना है तो जीवन में लघुता लानी ही होगी। जिस शिष्य में लघुता, नम्रता है उस शिष्य पर गुरु पूरी कृपा करता है, क्योंकि विनयी शिष्य के लिए भगवान् ने उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन एक में गुरु को आदेश दिया है-

एवं विणयजुत्तस्स, सुयं अत्थं च तदुभयं।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुयं।।23।।

**भावार्थ**- गुरु महाराज को चाहिए कि इस प्रकार विनय से युक्त शिष्य के पूछने पर सूत्र, अर्थ और सूत्र-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ दोनों जैसा गुरु महाराज से सुना हो उसी प्रकार कहे। अतः गुरु अपना सम्पूर्ण ज्ञान विनीत शिष्य को उदार भाव से दे।

**4. समर्पण-** अन्तिम महत्त्वपूर्ण और उपर्युक्त तीन सूत्रों का आधार है- समर्पण। समर्पण शब्द की व्याख्या करें तो स-समान, म-मन (इच्छा), र-रहित, प-प्राथमिक, ण-णाण (ज्ञान) अर्थात् ज्ञान (समझ) पूर्वक प्राथमिक रूप से इच्छा रहित होना ही समर्पण है। हमारे पूज्य के प्रति सर्वसमर्पण होना चाहिए। अंध-समर्पण तो आज बहुतों में देखा जा सकता है, लेकिन सम्यक् समर्पण बहुत कम देखा जाता है। सच्चे समर्पण की पहली शर्त है ज्ञान (समझ पूर्वक) सहित समर्पण होना चाहिए, कुछ का ज्ञान सहित समर्पण हो सकता है, लेकिन जो हमारे अनुकूल हो वह स्वीकार है, जो हमारे प्रतिकूल है उसे हम अस्वीकार कर देते हैं, अतः ऐसा समर्पण भी पूर्ण समर्पण नहीं है। अतः समर्पण की दूसरी शर्त है समान रूप से अर्थात् सभी भावों में सभी परिस्थितियों में समर्पण होना चाहिए, तभी समर्पण को वास्तविक समर्पण कहा जायेगा। अतः हमारा भी गुरु के प्रति सर्वतोभावेन समर्पण होना चाहिए। समर्पण ही विकास के द्वार खोलता है या यूँ कहें कि उन्नति की प्रथम सीढ़ी समर्पण है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित चार सूत्र भाव रूप हैं। वैसे तो जैन दर्शन का मूलाधार भाव ही है, लेकिन जब भावों के साथ-साथ द्रव्य और मिल जाता है तो वह भाव व्यवहार में प्रेरणास्पद बन जाता है। अतः इन चार भाव सूत्रों के साथ द्रव्य रूप जो पाँच अभिगम हैं उनका भी पूर्णतया गुरु चरणों में जाते समय पालन करना है, वे इस प्रकार हैं- 1. सचित्त त्याग 2. अचित्त विवेक 3. उत्तरासंग 4. कर जोड़ (हाथ जोड़ना/वंदना) 5. मन की एकाग्रता। अतः इन पाँचों का पालन करना चाहिए/ध्यान रखना चाहिए।

**उपसंहार-** गुरु के पास जब भी जायें तब उपर्युक्त चार भाव सूत्रों के साथ द्रव्य रूप पाँच अभिगम का पूर्णतया पालन हो तो निश्चय ही वह गुरु-सान्निध्य हमारे भव-भ्रमण के दुःख को मिटाने वाला होगा। गुरु के सान्निध्य से हम क्या कुछ प्राप्त नहीं कर सकते हैं। कहा है-

गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिलै न मोक्ष।
गुरु बिन लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष।।

*-द्वारा श्री नोरतमल जी जैन (नाहर), गिब्स मेडिकल, सनातन स्कूल के पास, ब्यावर-305901*

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org